ओ३म्

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

लेखक

पं० शिवदयालु जी, मेरठ

सम्पादक

आचार्य स्वदेश

प्रकाशक :-

सत्य प्रकाशन

वेद मन्दिर वृन्दावन मार्ग, मथुरा - ३

ग्यारहवीं बार ३००० मूल्य ३/-

द्वितीय संस्करण

वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक महर्षि दयानन्द महाराज ने मानव मात्र के कल्याण का एक मात्र पथ सत्य ज्ञान का प्रचार–प्रसार बताया है, और सत्य विद्याओं का मूल आधार वेद है। क्योंकि वेद सच्चिदानन्द स्वरूप परम पिता परमात्मा द्वारा प्रदत्त ज्ञान है। सत्य का यथार्थ ज्ञान बिना वेद के पढ़े नहीं हो सकता है इसीलिए महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के नियमों में जहाँ विधान किया कि सत्य के ग्रहण करने व असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। वहीं ठीक पहले सत्य के उद्‌गम स्थान वेद का पढ़न–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है, का विधान करके बता दिया है कि विना वेद के पढ़े–पढ़ाये सत्य ज्ञान होना असम्भव है। विना सत्य ज्ञान के मानव मात्र का कल्याण होना भी असम्भव है। इस सत्यता की स्वीकार कर जहाँ वेद के पढ़ने–पढ़ाने के लिए कटिबद्ध रहें वहाँ इस बात के लिए भी सावधान रहें कि कहीं वेद विरुद्ध मत–पन्थ अपने कुचक्र में जन समाज को फँसाकर महती हानि न कर दें जैसा कि वर्तमान में दिखाई दे रहा है। आज समाज में फैली सारी अव्यवस्था का मूल कारण अज्ञान है। और अज्ञान का मूल कारण अवैदिक मत है। इन अवैदिक मतों रूपी झाड़–झंखाड़ को तर्क की पेनी कुटार से काट–काट फेंक देने का पावन

कार्य विना ऋषिवर देव दयानन्द के अनुयायियों के कौन कर सकता है। वर्तमान में बिच्छू घास की तरह उगा पन्थ ब्रह्मकुमारी मत जहाँ अपना जहर वर्तमान पीढ़ी के विनाश को फैला रहा है। वहीं हमारी मान्य ऐतिहासिक परम्पराओं पर करारी चोट कर रहा है। इस जहरीले सर्प का मुँह कुचलना मानवता के पावन कलेवर को बचाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मान्यवर लेखक पं० शिवदयालु जी द्वारा किया ब्रह्मकुमारी मत दर्पण नामक पुस्तक लिखकर किया पावन कार्य निश्चित रूप से श्लाघनीय है। हमारा विश्वास है कि ब्रह्मकुमारी मत दर्पण नाम पुस्तिका इस मत की वस्तुस्थिति बताकर, एक बड़े जन समूह को पतन के गर्त्त में जाने से बचाने के पावन कार्य में परम सहायक होगी। प्रभु कृपा करें, कि हम अपने ध्येय में सफल हों।

ब्रह्मकुमारी मत सुनो, धूर्त्तों का व्यापार।
विद्या का वैरी महा, बढा रहा व्यभिचार।।
बढा रहा व्यभिचार, करे अतिशय कुटिलाई।
बहिन बनाई नारि, पती को कहता भाई।।
हो स्वदेश का नाश, सभी लो आज विचारी।
फैल गया मत अगर, देश में ब्रह्मकुमारी।।

ऋषि अनुचर
- **स्वदेश**
सम्पादक तपोभूमि मासिक
मथुरा (उ०प्र०)

सम्पादकीय

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता।
तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।

यजुर्वेद ४०।।३।।

ये जनाः आत्म हनो = जो मनुष्य आत्मा का हनन करते हैं
ते के प्रेत्या = वे निश्चय पूर्वक मरने के पश्चात्
ताम् अन्धेन तमस = उन घोर अन्धकार से घिरी हुई
आवृता = अज्ञान में डूबी हुई
असुर्या नाम से लोकाः = प्रकाश रहित ज्ञान–शून्य (कीट–पतंग वृक्षादि की) योनियों में
अपि गच्छन्ति = ही जाते हैं।

मित्रो ! बताते हैं चौरासी लाख योनियाँ हैं। इनमें मनुष्य योनि श्रेष्ठतम है। एक ही आधार है मनुष्य की इस श्रेष्ठवत्ता का। वह है ज्ञान–विवेक–बुद्धि। किसी ने कितना ठीक कहा है –

''ज्ञानोहितेषामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनः पशुभिः समाना''

मनुष्य शरीर पाकर भी जो विवेक से–बुद्धि और विचार से कार्य नहीं करता वह तो निरा पशु है। अविवेकी भगवान् के सबसे बड़े वरदान बुद्धि का अपमान करने से मनुष्य जीवन के सच्चे लाभ से वंचित ही रहता है। अतः वह आत्म हत्यारा है। ऐसे आत्म हन्ता से विवेक का वरदान वापिस ले लिया जाता है और मरने के पश्चात् ज्ञान–शून्य कीड़े–मकोड़े, पशु–पक्षी और वृक्षादि की योनियाँ ही उसे मिलती हैं।

प्रकट है कि यदि आप आत्म–पतन के इस पाप से बचना

चाहते हैं तो बुद्धि तत्व का सदुपयोग कीजिये। कैसे आश्चर्य की बात है कि अनेकों वकील, डाक्टर, प्रोफेसर और बड़े–२ व्यवसायी जो अन्य विषयों में बाल की खाल खींचते हैं धर्म के क्षेत्र में घोर अन्ध विश्वासी, विवेक–शून्य और महामूढ़ तक देखे जाते हैं। धर्म के क्षेत्र में मनुष्य के इस बौद्धिक दिवालियेपन का ही दुष्परिणाम है – ज्ञान–विज्ञान के इस युग में, इस बीसवीं सदी में भी सैकड़ों अवतारों, पन्थाइयों और तथाकथित गुरुओं की अपार भीड़ !

सच्चा आचार्य या गुरु शिष्य के विवेक को जगाता है। विवेक को जगाकर उसके जीवन में शरीर और आत्मा अथवा लोक और परलोक के बीच समन्वय वृत्ति को जगाता है। पर कुछ ऐसे भी हैं जो आचार्य या गुरु का चोगा पहिन मनुष्य के विवेक को सुलाते हैं, शिष्य की श्रद्धा और विश्वास का दुरुपयोग करते हैं। ऐसे गुरुडमवादी स्वार्थवश अवैदिक पन्थों को घड़ते हैं। कभी ये पन्थाई गुरु शरीर और संसार की उपेक्षा कर कोरे अध्यात्म की बात कर संसार को मिथ्या बताते हैं, मनुष्य को अपने, परिवार समाज और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यों से दूर ले जाते पर अपने को पुजवाते हैं और इस प्रकार घोर राष्ट्रीय पतन और पराधीनता की राहें खोलते हैं तो कभी ये धर्मध्वजी शरीर और इन्द्रिय–सुख को ही धर्म का चोगा पहिनाकर अपने को भगवान बताकर घोर विलासिता का जीवन जीते और कामुकता की धारायें बहाकर मानव समाज को अतल तल में डुबाने के पाप भागी बनते हैं। हंसामत, ब्रह्माकुमारी मत तथा विभिन्न मत–मतान्तरों के जन्म के पीछे मनुष्य का यही इन्द्रिय–वासना जन्य निकृष्ट स्वार्थ अट्ठाहास करता है। ब्रह्माकुमारी मत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भगवान् आया है' के

पृष्ठ ३५ की निम्न पंक्तियां देखें –

लोकलाज कुल मर्यादा का, डुबा चले हम कमल किनारा।
हमको क्या फिर और चाहिये, अगर पा सके प्यार तुम्हारा।।
सभी सजनियों का वह साजन, जब आ जाता भोला भाला।
यह संगम का संग निराला।। (भगवान् आया है पृष्ठ ३५)

अर्थ के क्षेत्र में ब्लैक करने वालों के प्रति जनता में रोष व्याप्त है, वह समय पता नहीं कब आयेगा जब धर्म के क्षेत्र में दिन रात ब्लैक करने वालों को देश की प्रबुद्ध जनता पहचानेगी, इनके सर्वनाश के स्वर गूँजेंगे और माँ मानवता इन धार्मिक लुटेरों से त्राण पा सकेगी ? उस समय की उत्सुकता से प्रतीक्षा है।

'ब्रह्माकुमारी मत दर्पण' का प्रणयन विद्वान् लेखक ने उसी आध्यात्मिक प्रभात की भावना से भावित होकर किया है। विश्वास है प्रबुद्ध जन इसी भाव से ग्रहण कर कल्याण पथ के पंथी बनेंगे।

माँ मानवता का विनम्र सेवक

– आचार्य प्रेमभिक्षुः
पूर्व सम्पादक 'तपोभूमि'
सत्य प्रकाशन, मथुरा।

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

सम्प्रदाय-प्रवर्तक

ब्रह्माकुमारी सम्प्रदाय के प्रवर्तक का नाम श्री लेखराज जी जिनको प्रायः दादा के नाम से ही पुकारते हैं। दादा एक सम्पन्न धनाढ्य परिवार के व्यक्ति थे, बम्बई में इनकी हीरे, जवाहरात की दुकान रही। आप स्वभाव से ही रंगीले और बिलासप्रिय थे। बम्बई में इनकी सर आगाखाँ के साथ मैत्री थी। सम्भवतः उन्हीं से दादा जी ने यह प्रेरणा प्राप्त की कि किस प्रकार अन्ध विश्वास में फँसी भोली–भाली जनता को अपने वश में किया जाय और बिना किसी तप–त्याग और संयम के एक महान् धार्मिक नेता बना जाय। अतः दादाजी ने किसी हठयोगी गुरु के द्वारा शिक्षा–ग्रहण करनी आरम्भ कर दी, और त्राटक की साधना का पूरा–पूरा अभ्यास किया, जिसके द्वारा सम्पर्क में आने वाले निर्बल–मस्तिष्क पुरुषों को तथा भावना प्रधान युवतियों को अपने वश में किया जा सके। अपने अपलक नेत्रों से दूसरों को अपनी ओर लगे नेत्रों पर प्रभाव डालकर उनको सम्मोहित किया जा सके। इस प्रकार दादाजी सम्मोहन एवं उच्चाटन नामक हठयोग की सिद्धियों से युक्त होकर कार्यक्षेत्र में उतरे।

बम्बई में अपना कारोबार बन्द कर आपने करांची में डेरा जा जमाया और ओ३म् मंडली की स्थापना की, साथ ही तथाकथित ब्रह्मज्ञान और योग की शिक्षा के बहाने चेला–चेली बनाना

आरम्भ कर दिया। आपका विशेष प्रयत्न चेली बनाने की ओर ही रहा। अनेक अविवाहित कुमारिकाएँ दीक्षित होने के लिए आने लगीं। कुछ विवाहित देवियाँ भी अपने–२ पतियों को त्याग कर आश्रम में रहने लगीं, और दादाजी द्वारा हठयोग की क्रियायें सीखने लगीं। इस समय दादाजी की आयु ४० वर्ष के लगभग थी।

ओ३म् मण्डली की स्थापना के कुछ काल उपरान्त जनता में उसके प्रति घृणा और रोष उत्पन्न हो गया। प्रतिष्ठित परिवारों की देवियाँ अपने पतियों और पुत्रों को त्याग कर तथा अविवाहित युवतियां अपने माता–पिता को त्याग कर जब दादा लेखराज की चेली बन उनके केलिसदन में रहने लगीं, तो रोष व घृणा का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। आर्यसमाज करांची ने अन्य नागरिकों के सहयोग से ओ३म् मण्डली के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया। स्थान–स्थान पर विरोध सभाएँ होने लगीं। करांची के अनेक गण्य–मान्य नेताओं का सहयोग प्राप्त किया गया। आर्यसमाज के अनेक प्रमुख कार्यकर्त्ताओं का शिष्ट–मण्डल श्री साधु टी० एल० वास्वानी जी से भी मिला और इस आन्दोलन में उनका सहयोग उपलब्ध किया। साधु वास्वानी ने सहर्ष ओ३म् मंडली के भ्रष्टाचार के विरुद्ध आन्दोलन में अपना सहयोग प्रदान किया। आन्दोलन के साथ–साथ ओ३म् मंडली के विरुद्ध कानून का दरवाजा भी खट–खटाया गया। परिणाम स्वरूप ओ३म्–मंडली पर प्रतिबन्ध लगा और दादाजी को करांची छोड़नी पड़ी और अपना डेरा तम्बू उखाड़ना पड़ा।

भारत विभाजन के उपरान्त श्रीमान जी ने अपनी लगभग १५० चेलियों के साथ भारत में पदार्पण किया। यहाँ आकर इस

मंडली का नया नाम ब्रह्माकुमारी रखा और आबू में जाकर दादाजी ने अपना डेरा जमाया। वहाँ की जनता ने भी अपना विरोध प्रदर्शित किया तो कुछ वर्षों के लिये दादाजी ने मौन साध लिया। तदुपरान्त आबू पर्वत पर एक अच्छी कोठी किराये पर लेकर जा बसे और कार्यक्रम पुनः चालू कर दिया।

सिन्ध से साथ लायी अपनी चेलियों को भारत के कुछ प्रमुख नगरों में भेजा और क्षेत्र तैयार करना आरम्भ किया। आबू में इन ब्रह्माकुमारियों को जादूगरनी एवं काजलिया पल्टन के नाम से पुकारा जाता है। यह दोनों विशेषण सम्मोहन क्रिया में दक्ष होने एवं नेत्रों में एक विशेष प्रकार का काजल जो त्राटक की साधना में सहायक होता है, लगाने के कारण सार्थक भी प्रतीत होते हैं।

नाम व्याख्या

इस ब्रह्माकुमारी नाम के सम्बन्ध में ऐसा अनुमान होता है कि दादाजी जो अपने को ब्रह्मा कहते थे और हर ५००० वर्षों में एक बार अपनी तथाकथित चतुर्युग की समाप्ति बेला में ब्रह्मलोक को त्याग कर पृथिवी तल पर मानव शरीर में आने का दावा करते थे, उनके प्रति आत्म–समर्पण करने वाली देवियाँ ब्रह्माकुमारी एवं पुरुष ब्रह्माकुमार कहाते हैं। स्त्री विवाहित हो या अविवाहित, पति को त्यागकर आई हो वा परित्यक्ता हो सब इस पन्थ में दीक्षित होने पर ब्रह्माकुमारी ही कहाती हैं। इसी प्रकार युवा एवं वृद्ध सभी पुरुष ब्रह्माकुमार नाम से पुकारे जाते हैं।

भाई - बहिन का नाता

इस सम्प्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त पति–पत्नी परस्पर एक दूसरे को भी बहिन–भाई कहने लगते हैं। प्रश्न है यह पति–पत्नी का आपस में भाई–बहिन का नाता कैसा ? क्या पति–पत्नी आपस में संयम एवं ब्रह्मचर्य का जीवन नहीं बिता सकते ? आश्रम के अन्दर शाखा में भाई–बहिन और आश्रम से बाहर जाकर ज्यों के त्यों पति–पत्नी बन जाते हैं। आश्रम में स्थायी रूप से निवास करने वाली देवियाँ भी छुट्टी लेकर घर जाती और अपने पति के साथ विलास करती हैं। और क्या इन आश्रमों में भी यह भाई–बहिन संयम से ही सदा रहते हैं ? देर रात्रि गये तक इन आश्रमों में भाई लोगों का कारों में बैठ कर आना–जाना क्या रहस्य पूर्ण नहीं है ?

ब्रह्माकुमारियाँ और ईसाईयत

ब्रह्माकुमारियों के अनेक मन्तव्य, विचार एवं व्यवहार ईसाईयों से मिलते–जुलते हैं। जिससे यह भी आशंका होती है कि यह कहीं प्रच्छन्न ईसाई अथवा ईसाई मिशन से सहायता प्राप्त तो नहीं हैं ?

आज भारत के कोने–कोने में ईसाईयों का यह प्रचार है कि कयामत शीघ्र आने वाली है और यह सारा संसार नष्ट हो जाने वाला है और जो लोग प्रभु ईसा मसीह की शरण में आ जावेंगे केवल वही बच सकेंगे, शेष सब मिट जाने वाले हैं।

इसी प्रकार यह ब्रह्माकुमारी प्रचारिकायें अपनी शाखाओं में यह प्रचार करती हैं कि चतुर्युगी का अन्त सन्निकट हैं। संसार

के मानवों की रक्षा हेतु स्वयं ब्रह्मा जी ब्रह्मलोक त्याग कर वृद्ध मानव शरीर में अर्थात् दादा लेखराज के शरीर में अवतरित हुए हैं, तथा जो इनकी शरण में आवेगा उनको वह प्रलय (कयामत) उपस्थित होने पर सकुशल अपने धाम ब्रह्मलोक में पहुँचा देंगे और शेष सब नष्ट हो जावेंगे। (पर दादा बेचारे स्वयं ही चल बसे!)

श्री दादाजी का अपने को त्रिमूर्ति ब्रह्मा कहने से तात्पर्य सिवाय ईसाईयों का होलीफादर–होली सन एवं होली घोष्ट के एकीकरण के और क्या है ? यदि त्रिमूर्ति से उनका तात्पर्य त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश से होता है तो वह शिव को त्रिदेव से पृथक न मानते।

श्री दादाजी को ब्रह्माकुमारियां परम पिता अर्थात् होली फादर कहती हैं और प्रत्येक शाखा के प्रमुख को श्री पिता जी अर्थात् रेवेरेण्ड फादर की उपाधि से विभूषित करती हैं। इसी प्रकार ईसाईयों की भाँति परस्पर ब्रदर्स एवं सिस्टर्स शब्द का हिन्दी में प्रयोग करती हैं। स्वयं वरजिन्स अर्थात् कुमारी कहाती हैं।

पूजा बलिदान की समाप्ति पर प्रोटेस्टेन्ट ईसाईयों में द्राक्षारस में भिगोकर पवित्र रोटी के टुकड़े तथा कैथालिकों में शैम्पियन अभिषिक्त टुकड़े भक्तों के मुखों में होली फादर द्वारा डाले जाते हैं। इसी प्रकार इस पाखण्ड मत में भी विशेष–२ अवसरों पर परम पिता जी, श्री पिताजी अथवा श्रद्धा माताजी (रेवेरेण्ड मदर) भक्त के मुखों में अपने कर कमलों से प्रसादी डालती हैं।

परमपिता श्री दादाजी द्वारा आबू के पाण्डु–भवन में तथा

सर्वत्र जहाँ–जहाँ वह पदार्पण करते थे, ब्रह्माकुमारियों का मुख चुम्बन किया जाना एवं गोदी में उनका लिटाना ईसाईयों की विकृत सभ्यता का प्रचार करना नहीं तो क्या है ? भारतीय परम्पराओं एवं मर्यादाओं की दृष्टि से यह सब व्यवहार पाप है, और व्यभिचार रूप है।

इसी प्रकार ब्रह्माकुमारियाँ भी योग साधना ढोंग रचकर पर–पुरुषों और विशेषकर नवयुवकों के साथ आँख से आँख मिलाकर बैठती हैं। हमारी संस्कृति की दृष्टि में यह सर्वथा हेय कर्म है, और काम चेष्टा को जागृत करने वाला निन्दित व्यापार है। हमारे यहाँ तो पर नारी के मुख की ओर ताकना तक भी अशिष्टता ही मानी जाती है। विश्वस्त सूत्र से यह पता चला है कि सन् १६५० में जब दादाजी सहारनपुर पधारे थे तो अपने उतारे की कोठी में उनके उदर को मेज बनाकर ब्रह्माकुमारियों ने ताश तक खेले और दादाजी लेटे–लेटे रस लेते रहे। दादाजी के भक्त बतलाने का कष्ट करें कि यह कौन–सी यौगिक साधना थी।

भारतीय संस्कृति से द्रोह

आर्य संस्कृति, विश्वासी भारत के प्रायः सब ही सम्प्रदायों तक ने अर्थात् शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, सिख आदि ने तथा ब्रह्म समाज, प्रार्थना–समाज आदि तक ने वेद को विश्व का प्राचीन ज्ञान ग्रन्थ माना है, साथ ही भारतीय अध्यात्म शास्त्र, उपनिषद, गीता आदि को पूरी–पूरी मान्यता प्रदान की है, किन्तु इस ब्रह्माकुमारी सम्प्रदाय ने सबको धता बताई है। आर्य (हिन्दू) पर्वों तथा संस्कारों को कहीं किसी मुरली में मान्यता प्रदान की गई हो

तो बतावें। और जहाँ तक हमारी मर्यादाओं और परम्पराओं का सम्बन्ध है, उनका तो स्पष्ट विरोध यह अपने व्यवहारों तथा आचरणों द्वारा पग–पग पर करते ही हैं।

मुरलियाँ

दादाजी द्वारा पाण्डु–भवन से जो समय–समय पर विज्ञप्तियाँ प्रकाशित होती हैं और शाखाओं में दादाजी के गोप–गोपी भक्ति–भाव से उनको पढ़ते और सुनते हैं– वह मुरलियाँ कहाती हैं। दादाजी ने जब करांची में ओ३म् मण्डली बनाई थी, तो वह अपने को कृष्ण रूप में अवतरित हुआ बतलाते थे और अपनी शक्ति को 'ओ राधा' कह कर पुकारते थे। किन्तु भारत में आकर जब से आपने ओ३म् मंडली को ब्रह्माकुमारी का रूप दिया, तब से वह अपने को कृष्ण के स्थान पर ब्रह्मा कहने लगे हैं और राधा को सरस्वती की उपाधि से विभूषित किया।

जिस प्रकार श्रीमद्भागवत् का कृष्ण अपनी मुरली की सुमधुर ध्वनि द्वारा जनमानस को अपनी ओर आकर्षित करता था, उसी प्रकार दादाजी जब सिन्ध में कृष्ण बने हुए थे और बह्माकुमारी इनकी गोपियाँ थीं, तो उन्होंने अपने प्रसारित ज्ञान को मुरली की संज्ञा प्रदान की थी। भारत में आकर ब्रह्मा बनने के उपरान्त मुरली का पूर्व नाम ही ज्यों का त्यों रहने दिया गया। **भारत में आकर वह ब्रह्माकुमारियों को अपनी पुत्रियाँ कहने लगे किन्तु उनके साथ व्यवहार वह गोपियों के साथ जैसा ही करते रहे।**

समय–समय पर प्रसारित इन मुरलियों में से छांटकर ८८ मुरलियाँ पृथक एक 'सच्ची गीता' पुस्तक के नाम से प्रकाशित की गई हैं। मुरलियों की मूल भाषा अत्यन्त अशुद्ध एवं निम्न कोटि की है। जिससे यह पता चलता है कि श्री दादाजी का भाषा सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त ही अल्प था। सम्भवतः उनको केवल लिखना और पढ़ना मात्र आता था। इन मुरलियों में जो कुछ लिखा हुआ है उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दादाजी वेद शास्त्र के विषय में नितान्त शून्य थे। धर्म की दुनियाँ में यदि आये ही थे तो कुछ अध्ययन, मनन आदि कर लेते, किन्तु उनको तो धर्म एवं योग की आड़ में कुछ और ही प्रसार करना था, तथा बुद्धिवाद एवं मानवता के स्थान पर अन्धविश्वास एवं संकीर्ण मतवाद का प्रसार करना ही अभीष्ट था। अस्तु, अब हम पाठकों को इनके इस तथाकथित ईश्वरीय ज्ञान अर्थात् 'सच्ची गीता' का कुछ दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

सच्ची गीता के आरम्भ में उसको सर्वश्रेष्ठ अपौरुषेय ज्ञान माना है, और युक्ति यह दी गई है कि अन्य ईश्वरीय ज्ञान (इलहाम) तो संसार में मानवों द्वारा ही प्रकट हुए हैं, किन्तु इनका यह ज्ञान साक्षात शिव (परमात्मा) अपने आनन्द धाम से समय–समय पर पृथिवी–तल पर आते और वृद्ध शरीर में अवतरित ब्रह्मा द्वारा उसको प्रकाशित करते हैं। किन्तु जब तक सर्वव्यापक परमात्मा का किसी स्थान विशेष में ही रहना और वहाँ से आना–जाना और तथाकथित ब्रह्मलोक त्याग कर मानव देह में दादा के रंगीले पुतले में अवतरित होना युक्ति, तर्क, विज्ञान एवं प्रमाणों से

सिद्ध न किया जाय, यह सब धारणायें मिथ्या कपोल कल्पनाओं के अतिरिक्त कुछ मूल्य नहीं रखतीं।

इन मुरलियों की संहिता को सच्ची गीता के नाम से पुकारना आपत्तिजनक है। उस नाम से यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि योगीराज कृष्ण की गीता झूँठी है। अब इस सच्ची गीता की बानगी देखें मुरली सं० ५७ के अन्त में लिखा है कि–

श्रीकृष्ण जी राम से पूर्व सतयुग में हुए हैं। सूर्यवंशी श्री नारायण ही का स्वयंवर से पहले का नाम कृष्ण है। श्रीकृष्ण ने गीता ज्ञान दिया ही नहीं, बल्कि अपने पूर्व जन्म में ब्रह्मा के रूप में मुझ (लेखराज) से गीता ज्ञान लिया।

इस लेख से यह स्पष्ट है कि महाभारत का सारा इतिहास झूठा है। इनके मत में द्वापर की संधि बेला में योगीराज महात्मा कृष्ण हुए ही नहीं। चन्द्रवंश में इस विभूति ने जन्म ही नहीं धारण किया। तात्पर्य यह कि ब्रह्माकुमारियों के आचार्य के मत से महाभारत के रचयिता वेद व्यास वैशम्पायनादि झूठे हैं। जिन शंकर, अरविन्द, गांधी आदि महापुरुषों ने गीता को आत्मा की अमरता का कृष्ण द्वारा प्रदत्त दिव्य ज्ञान माना है, वह सब ही भ्रान्त हैं। केवल इनके दादाजी सच्चे हैं जिन्होंने युक्ति तर्क प्रमाण शून्य यह गपोड़ा घड़ा है कि सूर्यवंशी नारायण का नाम कृष्ण था, कृष्ण नाम का कोई ऐतिहासिक युगपुरूष धरती पर जन्मा ही नहीं है। भारत के इतिहास को इस निर्लज्जतापूर्ण ढंग से झुठलाना, कृष्ण के अस्तित्व से इंकार करना अक्षम्य राष्ट्रीय एवं जातीय महापाप है।

युग कल्पना

भारत के समस्त वैदिक आचार्यों ने हिमालय से कन्याकुमारी तक युग–युगान्तरों से प्रचलित संकल्प के अनुसार सृष्टि संवत् को माना है। तदानुसार एक कल्प ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष का होता है। कल्प में १४ मन्वन्तर और प्रत्येक मन्वन्तर में ७२ चतर्युगी तथा प्रत्येक चतुर्युगी में ४३२०००वर्ष माने गये हैं। चार युग अर्थात् कलि, द्वापर, त्रेता एवं सत् हैं, जिनकी अवधि ४३२०००, ८६४०००, १२९६०००एवं १७२८००० वर्ष क्रमशः है। भारत के प्राचीन ज्योतिष शास्त्र एवं मनु आदि धर्मशास्त्र इसका प्रतिपादन करते हैं। किन्तु हमारे दादा लेखराज जी बिना किसी युक्ति तर्क एवं प्रमाण के यह मनवाना चाहते हैं, कि कल्प केवल ५००० वर्षों का मानें और उसके अन्तर प्रत्येक युग की आयु केवल १२५०वर्ष मानें। दादाजी की गणना में मन्वन्तरों एवं चतुर्युगियों का काम नहीं। दादाजी के कथनानुसार प्रति ५००० वर्षों के उपरान्त प्रलय हो जाती है, और प्रत्येक कल्प में सारी की सारी घटनायें ज्यों की त्यों घटित होती हैं। और उनमें लेशमात्र भी अन्तर नहीं होता। जर्थुस्त, मूसा, ईसा, बुद्ध, मुहम्मद, शंकर, नानक आदि मतों के आचार्य यथाक्रम प्रति कल्प में जन्म लेते और मतवादों का प्रचार करते हैं। दादाजी के विचारों के अनुसार अब प्रलय सन्निकट है। वर्तमान संसार को बने लगभग ५००० वर्ष केवल हुए हैं। दादाजी की कल्पना का आधार उनके स्वामी ईसाई विद्वान् हैं। दादाजी ईसाईयों की इस बुद्धि–शून्य मान्यता को हिन्दू जाति के सर

लादना चाहते हैं। और इस प्रकार भारतीय ज्योतिष शास्त्र एवं इतिहास पर पुचारा फेरना चाहते हैं। वैज्ञानिकों के मत में इन लोक–लोकान्तरों के निर्माण में करोड़ो वर्ष लगे हैं। हिमालय जिसकी ऊँचाई ३१००० फुट तक है, उसकी चट्टानों का निर्माण सागर के अन्दर १ अरब से अधिक वर्षों में वैज्ञानिकों की गणना के अनुसार हुआ है। दादाजी के इस मतानुसार यह सारे ज्योतिष शास्त्र झूठे और वैज्ञानिक झूठे हैं, और केवल यह लालबुझक्कड़ सच्चे हैं।

गातेश्वरी सीता का अपमान

मुरली सं० ६५ में दादाजी लिखते हैं कि **राम का इतिहास केवल काल्पनिक है।** नाटककार ने एक आध्यात्मिक पहेली को केवल मूर्तरूप प्रदान किया है। राम नाम शिव का ही है। रावण नाम माया का है। मन उसकी लंका है और विकार ग्रस्त मनुष्य की आत्मा का नाम सीता है। इस प्रकार की प्रलापपूर्ण दादाजी की मान्यताऐं हैं। इसी मुरली में लिखा है कि–

"रावण (माया) ने सीता (आत्मा) से भीख मांगी और जब सीता ने राम (मुझ परमात्मा) द्वारा लगाई गई लकीर (मर्यादा) को उलांघा तो रावण (माया) ने सीता का हरण कर लिया और आत्मा रूपी सीता रावण के कारागार में जीवन–बद्ध अवस्था में कैदी हो गई।"

दादाजी ने यदि रामायण पढ़ी होती तो लकीर लगाने वाले को राम (मुझ परमात्मा) न लिखकर लक्ष्मण (मुझ परमात्मा के भैया) लिखते। इस मुरली में दादाजी ने अपने को बह्मा से ऊपर

साक्षात् परमात्मा माना है, और अपने को ही राम भी कहा है। वाल्मीकि के राम को केवल काल्पनिक प्रतिपादित किया है। **सीता को धर्म की मर्यादा उल्लंघन करने वाली विषय वासना रत जीव कल्पित किया है। इस कल्पना के पीछे, जिसका कोई आधार नहीं दादाजी की नीच कलुषित मनोवृत्ति कार्य कर रही है, जिसका प्रदर्शन वह पाण्डु-भवन के अपने प्रवचनों में भी यदा-कदा करते रहते थे।**

दादाजी का इस प्रकार सीता माता के सतीत्व पर चोट करना हिन्दू जाति की भावनाओं को आघात पहुँचाना है। राम एवं सीता के पवित्र इतिहास को इस प्रकार झुठलानां महान् राष्ट्र–द्रोह है। राम भारत का महान् राष्ट्र पुरूष है और मातेश्वरी सीता तप, त्याग, संयम एवं सदाचार की दैदीप्यमयी प्रतिमा। यूरोपीय ईसाई लेखकों ने राम कृष्ण आदि के पावन इतिहास को मिटाने के लिये और हिन्दू जनता को पथ–भ्रष्ट करने के लिये महान् कुचक्र रचा है। और दादाजी जब इस प्रकार उस कुचक्र का समर्थन करते हैं, तो क्यों न हम इस ब्रह्माकुमारी पंथ को ईसाईयों का एजेन्ट और एजेन्सी कह सकते हैं। (और यह एक सचाई है। ब्रह्माकुमारी मत, हंसा मत आदि का प्रचार ईसाईयों के योजना–बद्ध षडयन्त्र का ही परिणाम है।)

मुरली सं० ६६ में दादाजी फरमाते हैं–

''महात्मा गांधी जी ने मुझ गीता निराकार के भगवान को जाना ही नहीं, ''इसलिये उन्होंने जो सिविल नाफरमानी असहयोग आमरण–व्रत आदि के रूप में हठयोग के जो तरीके अपनाये वह सभी मेरे ईश्वरीय ज्ञान और योग के विपरीत थे। इसलिये उनके

जीवन में रामराज्य की शुभ इच्छा पूरी न हो सकी।''

सर्वप्रथम हम इस रसिक रंगीले पाठे की हिम्मत की प्रशंसा करते हैं कि जो इस विज्ञान एवं बुद्धिवाद के युग में ३।। हाथ का शरीर धारण किये अपने को निराकार भगवान् कहने की जुर्रत करता रहा।

महत्मा गांधी जैसे महान् ईश्वर भक्त को नास्तिक कहना यथार्थ में धूर्त नास्तिकों का ही काम है।

दादाजी का यह मत है कि महात्मा गाँधी जी ने जो मार्ग दर्शाया है, उससे राम–राज्य की स्थापना नहीं हो सकती। गांधी जी के मार्ग को हजरत ने हठयोग का मार्ग बतलाया है, जब कि वह स्वयं हठयोग त्राटक क्रिया द्वारा चेला–चेली मूंडने में व्यस्त रहे, और धर्म की आड़ में अधर्म का प्रचार करते रहे।

मुरली सं० ६६ में आप फरमाते हैं कि–

''भारतवासी अन्य धर्म स्थापन करने वाले मनुष्यों के जन्म दिन तो मनाते हैं। किन्तु मुझ निराकार परमात्मा (शिव) की जयन्ती नहीं मनाते। ''

इस स्थल पर पुनः इस रंगीले पाठे ने अपने को निराकार परमात्मा कहने की धृष्टता की है। दादाजी को जनता से यह गिला है कि वह मेरी जयन्ती क्यों नहीं मनाती। जीव को ब्रह्म मानना सिद्धान्ततः मूर्खता है। भारत की जनता अब इस मूर्खता में फँसने वाली नहीं। लौकेषणा से सन्तप्त इस तथाकथित परमात्मा की दयनीय स्थिति पर तो तनिक विचार कीजिए ।

भारत के पतन का कारण इनकी सच्ची गीता के अनुसार निम्न प्रकार दर्शाया गया है –

"भारत की सरकार ने ईश्वरीय त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शंकर के तथा उनके भी रचयिता मुझे परमात्मा शिव के चित्र के बजाय और सृष्टि–चक्र के बजाय तीन शेरों वाले अशोक चक्र को ही अपना राष्ट्रीय निशान निर्धारित किया है।"

तात्पर्य यह है कि भारत सरकार अशोक चक्र के स्थान पर दादा लेखराज के सृष्टि–चक्र को अपनाती और भारत माता तथा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के चित्रों के बजाय दादाजी और उनकी प्रेयसी के चित्रों को पूजती तो देश का पतन न होता और भारत में राम–राज्य भी स्थापित हो जाता ! बलिहारी है बुद्धि की !!

इसी मुरली में आगे दादा जी लिखते हैं कि –

"मेरे प्रिय बच्चे कॉंग्रेस–पति गांधी जी जो कार्य अधूरा छोड़ गये हैं। उसको पूरा करने के लिये मैं पाण्डव–पति अर्थात् गीता का भगवान् अवतरित हुआ हूँ।"

महात्मा गांधी को राष्ट्र–पिता न मानकर कांग्रेस–पति कहना निश्चय उनका अपमान करना है। पिता के कार्य को पूरा करने के लिये पुत्र तो सदा प्रयत्न करता आया है, किन्तु यहाँ बात उल्टी है। पुत्र के कार्य को पूरा करने के लिए पिता ने जन्म लिया है। राष्ट्रपिता गांधी को अपना बच्चा कहने की इस धूर्त पाखण्डी की हिम्मत की बलिहारी है। जब गांधीजी के मार्ग को यह हजरत हठयोग मानते तथा राम–राज्य स्थापना के विपरीत मानते हैं, तो उसको पूरा करने का यह दम्भ कैसा ?

भारतीय प्रजा को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि यह तथाकथित निराकार परमात्मा तो चल बसे। अतः अन्त में हम श्री दादाजी के चेले–चेलियों से अनुरोध करते हैं कि वह अब इस

ऋषि–भूमि भारत पर कृपा कर और माँ मानवता के नाम पर अपने इस पाखंड एवं माया जाल का अन्त करें। यदि कुछ करने की तमन्ना ही है तो पाकिस्तान जावें जहाँ आपके दादा गुरू ने पहले–पहल यह जाल बिछाया था और बाद में श्रीमान् को हिजरत करनी पड़ी थी। भारत की प्रजातान्त्रिक सरकार तो आपके कार्यों में सहयोग देने मे आना कानी करेगी किन्तु वहाँ आपको तत्काल फल मिलेगा। आपके दादा की खूब जयन्तियाँ मनाई जावेंगी और आप ब्रह्माकुमारियों की भी विशेष रूप से पूजा –अर्चना होगी।

विश्व का भावी धर्म - आर्य धर्म

भारत का नाश नहीं हो सकता, भारत को ही अपने अन्दर से समस्त विश्व का भावी धर्म प्रकट करना होगा। एक ऐसा विश्वजनीन शाश्वत धर्म जो सभी धर्मो, विज्ञानों और दर्शनों में समन्वय स्थापित कर सके यथा मानव मात्र में एकत्वभाव निर्माण कर सके। उसी प्रकार नैतिकता के क्षेत्र में भारत का लक्ष्य होगा मानवता से मानवता को दूर करना, विश्व को आर्यधर्म में दीक्षित करना। ऐसा करने के लिए उसे अपने आपको पुनः आर्य बनाना होगा।

- अरविन्द

मुद्रक :– वैदिक प्रेस, वृन्दावन मार्ग, मथुरा –३